उपसंहार
उपश्रंखार

आचार्य डॉ. रमाकान्त शुक्ल के योगदान का मूल्यांकन

कविर्मनीषी परिभाषा: स्वयंभूर्वाधात्म्यतोर्थानु व्यद्वाचाच्छाद्यतीभयं समाभ्यो।।
(ईशाव्योपनिषद - छन्द ८)

तथा च-

अपने काव्यसंसारेत्व कविर्म्रेक: प्रजापति:।
वधापैं रोचते विशेष तथ्येदं परिवर्तते॥

उपरुक्त सूक्ष्माँ सिद्ध कवियों को अद्वैत सर्पनामक शक्ति को प्रभावित करती है। कवि समुद्राय को उनकी यह काव्य प्रतिभा उनके जन्मज्ञानात्मक को सरस्वती-आराधना का ही प्रतिफल होता है। कविवर आचार्य डॉ. रमाकान्त शुक्ल जी सरस्वती के ऐसे ही श्रेष्ठ आराधकों में से एक हैं, जिन्हें अपनी सम्पूर्ण साधना के काव्य सर्जना को एक नूतन एवं लोकोपकारी गति प्रदान की तथा अपने काव्यों के माध्यम से लोक को राष्ट्रीय भावना के जागरण में अभियोग दिया। आपकी काव्य-सृष्टि उत्कृष्ट दृष्टि से शार्म्ष्टी जीवन मूल्यों से सम्पूर्ण एवं अजरामर रूप में सुकृतित रहेगी।

आचार्य डॉ. शुक्ल जी सत्काव्य-सर्जना में तो शिरोमणि या शीर्षिक स्थान, संधारण करते हैं। ‘देववाणी-परिषद’ की स्थापना कर आपने ‘अर्ज्ञोत संस्कृत’ तैमारित संस्कृत-पत्रिका के समापन एवं प्रकाशन के महत्वपूर्ण भार निर्वहन में अपनी अहम भूमिका प्रदर्शित की तथा लगभग ३५ वर्षों से निरंतर आप इस पत्रिका का सफल समापन एवं प्रकाशन करते आ रहे हैं। भारत की संस्कृत पत्रिकाओं में आपने इस पत्रिका को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने में अपनी अतुल साम्राज्य प्रदर्शित कर संस्कृत के विद्वानों में अपनी गरिमा को प्रस्थापित किया है तथा समाज और राष्ट्र से आपने गुरु गोरंज की समुपलक्ष्म प्राप्त की है।

कविवर आचार्य डॉ. रमाकान्त शुक्ल जी एक श्रेष्ठ सुकवि एवं वशकार के रूप में तो प्रसिद्ध है ही साथ ही इनका सम्पादन कार्य ही परमोपरभोगी एवं महत्वपूर्ण तथा संस्कृत और भारतीय संस्कृति के समुपलन में महदुरदेय है। आपक द्वारा अनेक ग्रंथों का सुचारूत्या सम्पादन किया गया। सन् १९९३ ई. आपक अभिनन्दन में ‘देववाणी सुबास:’
(प्रथम एवं द्वितीय खंड) प्रकाशित हुआ, जो अत्यन्त लोकप्रिय है। संस्कृत सुकवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिपूर्ण संस्कृत, हिंदी के अध्येताओं एवं विद्वानों के लिये यह प्रथा सामान्य ज्ञानपूर्वक आदृत कोष है। आपने ‘देववाणी परिषद’ के माध्यम से अनेक कवियों/साहित्यकारों की रचनाओं का प्रकाशन कर संस्कृत साहित्य को समृद्धि प्रदान की है।

सुकवि श्रेष्ठ डॉ. रमाकान्त शुक्ल जी का संस्कृत और हिंदी पर असाधारण अधिकार है। आपने संस्कृत एवं हिंदी भाषा के माध्यम से प्रायः वैद्य कैलाश में प्रोड एवं प्रोजेक्ट राष्ट्रीय से परिपूर्ण रचनाओं की सुरक्षा कर सत्यांत्रता को समाज के समक्ष प्रस्तुत कर कामयाब कीर्तिमान प्रस्थापित किया है।

यथा-

रथ्यपाठीं- साहित्य-सौहात्य-भू: ।
भारती-वक्तकी-झक्कूसौहात्य-कृतं
भूतले भारती मेज्नार्तं सौह्रमु ।
गद्यपद्याभिंंतो श्रवद्वृत्ताभिंजत।
शीतृत्रूट्याभिंंतो लोकदावद्वितितम्
समपसाद समाधृत्यन्तर सौह्रमतम्
भूतले भारती मेज्नार्तं सौह्रमु ।
यत्र वृद्धावनो गोदं सार्यन्
स्वीममंदरस्मित्वा प्राप्यममु मलयन्।
चारुकादिबृनीलगोपालको
भूतले भारती तन्मामकं सौह्रमु ।
यथा विश्वे समस्टोमपि विप्रोतम्ते
पावनं नाम दिव्यं वशश्रोत्यतम्
प्राणिद्वृंच प्रीत्यापि यद्यनं
भूतले भारती तन्मामकं सौह्रमु ।

1 भारती में सौह्रमु, छन्द-६
2 भारती में सौह्रमु, छन्द-२७
3 भारती में सौह्रमु, छन्द-३७
4 भारती में सौह्रमु, छन्द-६५
वस्तुतः जो साहित्य आत्मज्ञान और राष्ट्रीयता का माध्यम बनें, वही साहित्य धन्यता को प्राप्त होता है। इस दृष्टि से परमाणु डॉ. शुकल जी द्वारा रचित-साहित्य सफलता की निकष पर सफल हैं।

शोष के क्षेत्र में भी परम विद्वान मनीषी डॉ. शुकल जी शोष निर्देशकों की अप्रयक्त में प्रतिष्ठित हैं। आपकी सात्तमी शोष दृष्टि दार्शनिक सुचितरता से परिपूर्ण है, जो शोषाधिकारियों के लिए वरदन के रूप में प्रत्यक्ष होती है। संस्कृत-साहित्य की किंवदंती विख्यातों में आपने शोषकार्य सम्पन्न करने से तथा शोष की एक महानीति दिख प्रसार की। अनुसंधान-सम्पूर्णता, सिद्धांत और प्रक्रिया में प्रावीण युग अपने शोषाधिकारियों की शोष की ‘तह’ में जाने को प्रेषित कर उत्कृष्ट शोष-प्रबंधकों को प्रस्तुत कराने का जो सदुप्रक्रम किया है, बह अनुसंधान आदर्श है। साहित्य जगत में सुव्याय प्राप्त डॉ. शुकल जी श्रेष्ठ पंडित के गुणों से सम्पन्न है। सत्य, सदाचार, सदाशिवता, गम्भीर्य, शर्तता, भ्रमण, सम्मता, सहदेवता और सहायता, सत्कर्म-निष्ठा, परिवर्तन आदि सदर्मण आपके व्यक्तित्व और कृतित्व के गौरव हैं।

वस्तुतः सत्य की प्रतिष्ठा में ही वाक्सिनिडि होती है। यथोऽख्य है कि–
‘सत्यप्रतिष्ठाय वाक्सिनिडि।’

वाक्सिनिडि कवि मनीषिका का काव्य न तो कभी असफल होता है और न ही जीवन होता है। यथा कथित है कि– ‘पश्च देवस्य काव्यं न ममार न जीवति।’

भारतीय संस्कृति और समाज को समुद्र अवसर वर्तमान डॉ. शुकल जी का साहित्य भी उक्त दृष्टि से अज्रामर ही सिद्ध है। आपने मानव और पृथ्वी को सम्प्रस्त कर साहित्य जगत में अपने परम धेराल का परिचय दिया है। जैसा निर्देशन है कि–

‘श्रेयश्च पृथ्वी मनुष्यमेव।
तो सम्पूर्णत विविधक धेरा।’

भारतीय संस्कृति में ‘राजध्वम’ को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। यथा– ‘भारतभूमि: पुजोमह पधिवाः’

शुकवि डॉ. शुकल जी ने भी इसी सुभाष भाव से ‘भारत में भारतम’ की गेय वर्तमान में संरचना कर भारतीय संस्कृति का सम्मोहण कर भारतीय मानव में राष्ट्रीयता की भावना के संस्थापन हेतु जो सुयुत्किरित है, वह परम शल्यता तथा अनुपमेय सुकार्य है। यथोऽख्य है कि–

1 अवबंधुवद १२-१२-१२
यह सत्यं शिवं सुनदं राजतं,
सामराज्यं च यत्रा भवत्पावनम्।।

यस्य ताटस्थायिनीति: प्रसिद्धिं गता,
भूतले भावे तत्मामकं भरतम्।।

शोषितो नाथं कह्वन स्वयंतन्त्रत्वं,
व्याधिना पीडितो नो भवेछ्य।

नाथं कोणिं प्रवेशिन्त्य हीनं,
मोदता मे सदा पावनं भरतम्।।

इसी प्रकार अन्य रचनाओं मे दृश्य है;

अभिमानधना चिन्तवोपेता
शालीना भारतजनताहम्।

कुलशारदिक्षि कठिना कुपुराणापि
सुकुमारा भारतजनताहम्।

कालिदाससुल्लिकम्बनः
गालिबबविद्रस्रसवनायते।

पम्परनजयदेवसुरः
विद्वापत्तिपत्रसादनुते!।

ब्रह्मान्देदोहसरसः
मज्जनकोविदकविकाव्यधरे!

जय जय जय हे भारतभूमि!

जय जय जय भारतभूमि!।

सदाज्ञानविधवंस्कारी मनोजः
समालोक्यते यत्र वाणी--विहारः।

विध्वते स्विमित्रं च य: प्राणिमात्रं
भजेऽहं मुदा भारतं तं स्वदेशम्।।

1 भावि मे भारतम्, छन्दे ६८
2 भावि मे भारतम्, छन्दे १०८
3 भारतजनताहम्, छन्दे १, पृष्ठ ३३
4 सर्वेशु ला 'जय भारतभूमि', छन्दे १, पृष्ठ ७९
5 सर्वेशु ला 'भज भारतम्', छन्दे १
लोकप्रबोध्यातः शोकप्रणालिश्रीलम्।
चेतोविकाशःकुञ्जलं मम भारतं विजयते॥

साहित्य जगतृ में यशस्विता प्रात परम विहान मनीषीं एवं अच्छे मानव की कसौटी पर खेरे उतरे 'पद्मश्री' प्रात डॉ. रमाकांत शुकल जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से समबद्ध शोधपूर्ण इस शोधकार्य ने मुझे कृतार्थ किया है। माननीय डॉ. शुकल जी में एक अनोखी प्रतिभा है। वे एक अनासक्त योगी के रूप में दृष्टिभूत हुए कर्मफल की कामना से विरहित महामनीयों हैं। उनके विषय में श्रीमद्भागवत गीता की प्रस्तुत पत्तियाँ सटीक सिद्ध हैं।

यथा-
तस्माद्योगाय युज्यस्य योगः कर्मस्तु कौशलम्॥
तत्मादसकः सतः कार्य कर्म समायर॥
योगस्थः कुरु कर्माणि सज्जो व्यत्त्वा धनन्यजय॥

श्रद्धेय डॉ. शुकल जी एक सिद्ध साहित्यकार हैं। उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व भी वहू-आयामी है। उनके कृतित्व समबन्धी अनेक 'शोध विषय' शोध निदेशकों की दृष्टि में प्रदर्शनीय भी होंगे। मेरा यह शोध कार्य, चर्चापि मेरे सुयल का ही प्रतिफलन है, तथापि ऐसे महामनीयों के विषय में अनन्त तत्त्व कथनीय रहेंगे। मेरा कार्य तो कवि कुरु गुरु महाकवि कालिदास के शब्दों में बोलेगा का ही आभास कराता हुआ सा मेरे लिए प्रतीत होता है।

यथा-
तित्तिपुंडरसम्भा मोहादुधुधेनार्सिम सागरम॥
अधि च- अथवाकृतवाच्यां संशोधनार्म पूर्वसुधिम:।
मणिव बज्र समुकोणां सूर्वस्तेवाभि यो गति:॥

अंत में श्रद्धेय डॉ. शुकल जी से समबन्धित यह शोध कार्य करके में अपने को परम धन्य मानता हूँ। यह शोध संस्कृत समाज के सदुपयोग के लिए हो तथा इससे संस्कृत शोध साहित्य की समृद्धि हो, इसी कामना से विहृत समुदाय को विनत नमन।

1 सर्वशुक्लता 'मम भारतं विजयते', छन्-२
2 गीता २-५०
3 गीता ३-१९
4 गीता २-४८
5 रघुवर्ष महाकाव्य १-२
6 रघुवर्ष महाकाव्य १-४